रस सिद्धांत एवं साधारणीकरण

unacademy

All live & structured courses | Lessons by all top Educators | Weekly quizzes & doubt-clearing

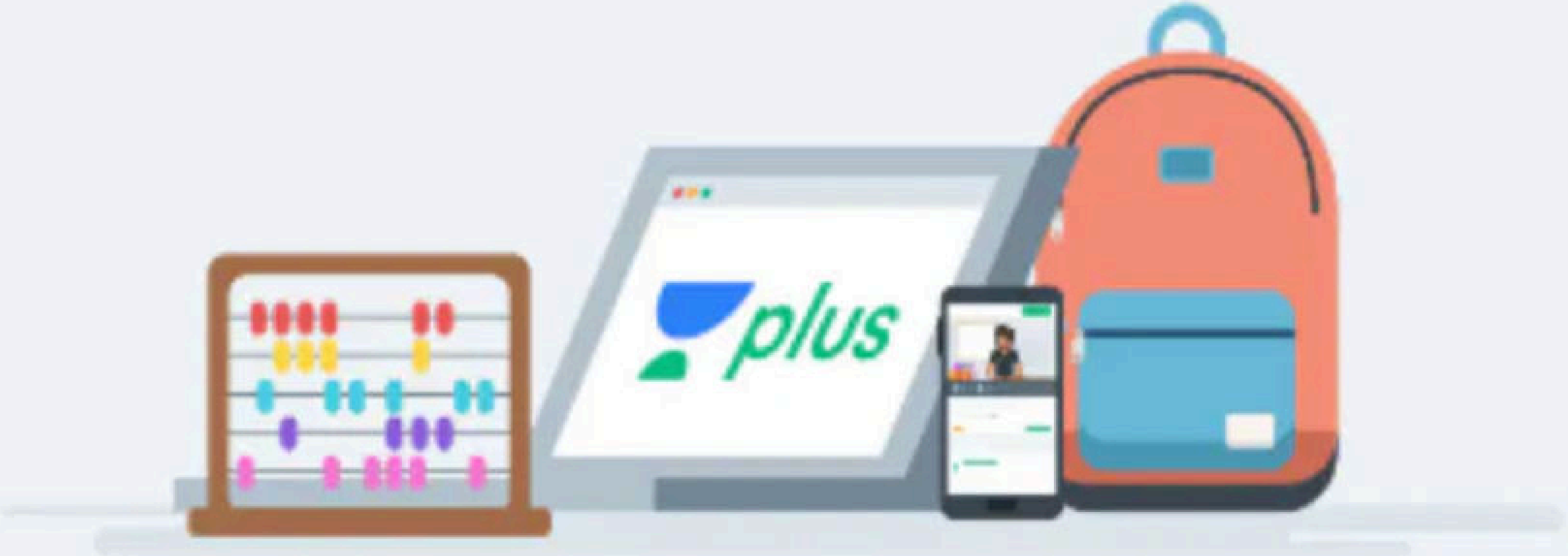

Sakshi Singh

Referral Code - sakshipuspraj

रस

- रस - विभावानुभाव व्यभिचारी भाव संयोगाद्रस निष्पत्तिः
- कुछ भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।
- भाव - स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव , व्यभिचारी भाव

कहलाता है।

भरत ने रस-निष्पत्ति की व्याख्या करते हुए भात एवं प्रपानक रस के दो उदाहरण दिये हैं। उन्होंने कहा है जिस प्रकार मीठे, नमकीन, कड़वे आदि पदार्थों से प्रपानक रस बनाया जाता है और उसे लोग पीकर प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार विभावादि से रस की निष्पत्ति होती है जिसके आस्वाद से "सहृदय हर्षादि की प्राप्ति करते हैं।" यह उदाहरण भरत की रस सम्बन्धी परिकल्पना के समझने के लिए

भारतीय काव्य-चिन्तन का सबसे पुराना उपलब्ध ग्रन्थ भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र है। यद्यपि भरतमुनि ने लिखा है कि ब्रह्मा ने नाट्यवेद का निर्माण करने के लिए ऋग्वेद से पाठ्य लिया, सामवेद से गीत लिया, यजुर्वेद से अभिनय लिया तथा रसों को अथर्ववेद से लिया और इस प्रकार एक पाँचवें वेद नाट्यशास्त्र का निर्माण किया।

रस-निष्पत्ति

भरत का मत

भरत ने नाटक के केन्द्रीय तत्त्व रस की निष्पत्ति की व्याख्या करते हुए कहा है कि विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है—विभावानुभावसंचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः। विभाव दो प्रकार के होते हैं—एक, आलम्बन विभाव जो भाव का प्रधान कारण होता है—जैसे राम-रावण युद्ध में राम-रावण पर क्रोध करते हैं तो रावण राम के क्रोध का आलम्बन विभाव है, दो, उद्दीपन विभाव जो उत्पन्न भाव को और अधिक प्रखर बनाते हैं—जैसे रणभूमि का दृश्य राम के क्रोध को और भड़काता है। संचारी भाव मूल भाव को अधिक पुष्ट करके थोड़े समय में छिप जाते हैं (संचरणशील होने के कारण ही उन्हें संचारी भाव कहा जाता है) जैसे राम को जब यह स्मृति आती है कि यह वही रावण है जिसने सीता का हरण किया है, जिसने ऋषि-मुनियों की तपस्या को भंग किया था, तो इससे उनका क्रोध और बढ़ जाता है। इसलिए स्मृति संचारी भाव है। स्मृति करुण

रस का भी संचारी भाव हो सकता है जिसमें मरे हुए सम्बन्धी की बातों की स्मृति से पीड़ा और बढ़ जाती है और जब भाव (क्रोध का भाव) अपनी तीव्र अवस्था में पहुँच जाता है तब राम कुछ चेष्टाएँ करते हैं—वे रावण को कटुवचन कहते हैं, उस पर प्रहार करते हैं या उनका चेहरा तमतमा जाता है, वाणी कठोर हो जाती है, भुजाएँ फड़कने लगती हैं—ये सब अनुभाव हैं। जिन क्रियाओं पर राम का अधिकार है और जिन्हें वे स्वेच्छा से करते हैं—रावण पर प्रहार आदि—वे कायिक अनुभाव कहलाते हैं और जिन पर राम का वश नहीं है—जैसे चेहरा तमतमा जाना—वे सात्त्विक अनुभाव कहलाते हैं। नायिका भेद आदि में अन्य अनेक सात्त्विक अनुभावों का वर्णन भी मिलता है। ऊपर दिये गये उदाहरण से स्पष्ट है कि रस-निष्पत्ति जीवन के अनुभव के सर्जनात्मक अनुकरण से ही होती है—राम-रावण युद्ध में जो घटित हुआ, नाटककार या कवि उसे ही एक विशिष्ट संरचना के रूप में रंगमंच पर प्रस्तुत करता है। इसीलिए आगे चलकर मम्मट ने विभावादि की व्याख्या करते हुए कहा है कि जीवन में जो भाव के कारण, सहकारी कारण और कार्य—शारीरिक-मानसिक चेष्टाएँ या विकार होते हैं, उन्हीं को ही काव्य में प्रस्तुत किया जाता है और वे ही क्रमशः विभाव, संचारी भाव एवं अनुभाव कहलाते हैं।

भाव की संख्या

- भाव - भरतमुनि - 49
- स्थायी भाव - 8 (रस 8)
- संचारी - 33 (निर्वेद को भी संचारी)
- अनुभाव(सात्विक अनुभाव)- 8
- रसूत्र के व्याख्याकार - 4

स्थायी भाव

भाव के भेद

भावों की संख्या ४९ निर्धारित की गयी है जिनमें आठ स्थायी भाव, तैंतीस व्यभिचारी तथा आठ सात्विक हैं।

स्थायी भाव

स्थायी भाव चित्तवृत्ति रूप हैं जिनके संस्कार से शून्य कोई भी प्राणी नहीं होता। केवल किसी प्राणी में कोई चित्तवृत्ति अधिक होती है और किसी में कम। किसी की उचित विषय में नियन्त्रित होती है, किसी की इसके विपरीत। उसी कारण कोई धर्म अर्थ आदि पुरुषार्थ के उपयुक्त होने से उत्तम प्रकृति का कहा जाता है तो कोई इससे हीन होने से मध्यम और अधम।

स्थायी भावों की स्थिति अन्य भावों के बीच वही होती है जो प्रजा के मध्य राजा तथा शिष्यों के मध्य गुरु की। भरतमुनि का कहना है कि जिस प्रकार राजा एवं अनुचर सभी मनुष्य होते हैं, लेकिन कुल–शील, विद्या, आचरण, शिल्प आदि में विचक्षण होने के कारण उनमें से कोई राजा और इन गुणों में अल्प होने से कोई अनुचर होता है उसी प्रकार स्थायी भाव में विरोधी अविरोधी सभी स्थितियों में बने रहने की क्षमता होने के कारण वह राजा है। स्थायी भाव की गहन होने के कारण पुनः–पुनः अभिव्यक्ति होती रहती है और वही रसत्व को प्राप्त होता है। लेकिन यह उल्लेखनीय है कि स्थायी भाव रसत्व को तभी प्राप्त होगा जब वह विभावादि से संयुक्त होगा।

भरतमुनि ने आठ स्थायी भावों का उल्लेख किया है। रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा एवं विस्मय।

विषय की प्राप्ति से उत्पन्न होता है।

विभाव

- आलम्बन - आश्रय के मन के किसी ख़ास स्थाई भाव को जागृत करने वाला प्रमुख कारण। (रावण)
- उद्दीपन - जागृत स्थाई भाव को तीव्र करने वाली परिस्थितियाँ

1. कायिक(दैहिक क्रियाएँ)
2. वाचिक (मौखिक)
3. सात्विक (स्वयमेव उत्पन्न)
4. आहार्य(मुख राग)

अनुभाव

अनुभाव

विभाव के प्रति आश्रय के भावों का साक्षात्कार अनुभावों से किया जाता है वस्तुतः ये वाचिक, आंगिक, आहार्य तथा सात्विक अभिनय के अन्तर्गत आने वाली आश्रय की अनेक

चेष्टाएँ और व्यापार ही हैं जिनसे आश्रय के हृदय के भावों को व्यक्त रूप मिलता है और जो सामाजिक को भाव विशेष की प्रतीति कराता है। वाचिक, आंगिक आहार्य तथा सात्विक अभिनय के द्वारा क्योंकि इसका अर्थ अनुभावित होता है अतः अनुभाव नाम से जाना जाता है।

सात्विक को काम मिला **आठ** **स्तम्भ** लगाने का, सभी स्तम्भ लगाते लगाते थकान से उसे **स्वेद** होने लगा। अपने द्वारा लगाए स्तम्भ देख सात्विक इतना **रोमांचित** हुआ कि उसका **स्वरभंग** होने लगा, हाथ पैर काँपने(**वेपथु**) लगे, रंग उड़ गया(**वैवर्ण्य**) और उसकी आँखों से **प्रलय**कारी **अश्रु** बह चले।

संचारी भाव

व्यभिचारी भाव

विविध प्रकार से अनुकूल होकर जो रसों में संचरण करते हैं उन्हें व्यभिचारी भाव कहते हैं। स्थायी भावों को वाचिक, आंगिक तथा सात्विक अनुभावों से युक्त करके व्यभिचारियों के द्वारा नाट्य प्रयोग में रस की प्रतीति कराई जाती है। ये स्थायी भावों को रस रूप में व्यक्त करते हैं। इन्हें संचारी भाव भी कहते हैं। रस की उत्पत्ति के समय जो अल्पकालीन मनोवेग मानव हृदय में छोटी–छोटी तरंगों के रूप में उठकर रस का रूप धारण करने वाले स्थायी भाव को पुष्ट करते हैं और पानी के बुलबुले की भाँति स्वयं विलीन हो जाते हैं, वे संचारी भाव कहलाते हैं। वस्तुतः स्थायी भाव चित्तवृत्ति का वह धागा है जिस पर व्यभिचारी भाव विभिन्न मणियों के रूप में पिरोये जाते हैं। इससे स्थायी भाव परिवर्तित भी नहीं होता और अप्रभावित भी नहीं रहता। वह संचारी भावों को प्रभावित करता है और उनके वैचित्र्यपूर्ण संयोगों से वैचित्र्य की सृष्टि भी करता है।

संचारी भावों की संख्या तैंतीस निर्धारित की गयी है। भरतमुनि द्वारा दी गई सूची के अनुसार वे इस प्रकार हैं—

निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य, चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, व्रीडा, चपलता, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, विवोध, अमर्ष, अवहित्थ, उग्रता, मति, व्याधि, उन्मांद, मरण, त्रास, वितर्क, स्वप्न।

रस सूत्र के व्याख्याकार

भट्टलोल्लट-उपचितिवाद या उत्पत्तिवाद

भट्टलोल्लट के अनुसार, रस निष्पत्ति का अर्थ उपचित होना, उत्पन्न या पुष्ट होना है। इनके सिद्धांत को उत्पत्तिवाद या उपचितिवाद इसी दृष्टि से कहते हैं। इनके अनुसार, रूप बाहुल्य के योग (उपचय) से रति स्थायी भाव शृंगार रस में उद्‌भूत होता है, और क्रोध अपनी पूर्ण अवस्था में रौद्र रस में आविर्भूत होता है।

भट्टलोल्लट ने "संयोग" की तीन स्थितियों का उल्लेख किया है। विभाव स्थायी भाव के कारण हैं, उत्पाद्य-उत्पादक सम्बन्ध से इनका संयोग होना माना गया है। अनुभाव तथा स्थायी भाव का सम्बन्ध गम्य-गमक माना गया है और संचारी भाव एवं स्थायी भाव का सम्बन्ध पोष्य-पोषक है। इस प्रकार विभाव-अनुभाव एवं संचारी भाव के सम्बन्ध से स्थायी भाव उपचित होकर रस की निष्पत्ति करता है।

भाव उपचित होकर रस की निष्पत्ति करता है।

भट्टलोल्लट के अनुसार, रस की अवस्थिति मूलतः अनुकार्य अर्थात ऐतिहासिक पात्र रामादि में होती है तथा गौण रूप से अनुकर्ता में भी अभिनय कौशल से अनुकर्ता में रामरूपता के अनुसन्धान के बल से रस की स्थिति स्वीकार की गयी है। प्रत्यक्षतः इस मत में सामाजिक का कोई उल्लेख नहीं। भट्टलोल्लट का रस-सिद्धान्त मीमांसा दर्शन पर आधारित है।

लोल्लट के सिद्धान्त की कुछ शक्ति भी है और सीमा भी। शक्ति यह कि—

(क) यह कला में वस्तु के महत्व की स्थापना करता है।

(ख) नट, गौण रूप में ही सही, रस की घोषणा कर नाट्यकला के विकास को एक नयी दिशा देता है।

भट्टशंकुक ने न्याय दर्शन की दृष्टि से लोल्लट की स्थापनाओं का खंडन किया। उनके अनुसार—

(क) विभाव एवं स्थायी भाव में कारण-कार्य सम्बन्ध नहीं हो सकता, क्योंकि न्याय के अनुसार कारण-कार्य का पूर्ववर्ती है और कारण का नाश कार्य को प्रभावित नहीं करता। पर रस की स्थिति विभावादि के साथ स्वीकार की जाती है। विभावादि के न रहने पर रस की स्थिति नहीं रहती।

(ख) उपचित स्थायी भाव को रस कहने से यह निश्चित करना संभव नहीं कि कितनी मात्रा तक उपचित होकर रति, हास आदि स्थायी भाव रस कहलाते हैं। यदि यह माना जाय कि उच्चतम पराकाष्ठा पर पहुँचने पर ही स्थायी भाव रस कहलाता है तब हास्य रस जिसका भरत ने स्मित, हसित आदि छह भेद किया है उसकी क्या संगति रह जायेगी?

(ग) नट-नटी अभ्यासवश अभिनय कला में पारंगत होकर अभिनय करते हैं, भाव विभोर होकर नहीं, अतः इनमें रस दशा नहीं मानी जा सकती।

(घ) लोल्लट के सिद्धान्त की सबसे बड़ी कमजोरी है कि यह दर्शक और अभिनय के संबंध की व्याख्या नहीं करता। यदि दर्शक को अभिनय देखकर आनन्द नहीं होता तो उसका उससे क्या प्रयोजन?

शंकुक : अनुमितिवाद

शंकुक के अनुसार विभावादिकों से स्थायीभाव का अनुमान होता है। स्थायी भाव की उपस्थिति नाटक में अभिनय द्वारा होती है। अभिनय अनुकरणात्मक है। शंकुक ने अभिनय पक्ष पर बल देते हुए कहा कि रति एवं शोक आदि का शाब्दिक प्रयोग पर्याप्त नहीं, क्योंकि स्थायी भाव की प्रतीति शाब्दिक कथन मात्र से नहीं, अपितु अभिनय से होती है। नाट्य के प्रसंग में अभिनय का वही अर्थ है जो काव्य के प्रसंग में व्यंजना का। अभिनय की कलात्मकता के द्वारा भाव की व्यंजना होती है। अतः स्थायी भाव की प्रतीति काव्यात्मक न होकर अभिनेय मानी गयी है। शंकुक उपचित स्थायी भाव को रस न मानकर अनुक्रियमाण स्थायी भाव को रस मानते हैं।

अनुकरण की गई रति ही श्रृंगार है जो नट रामादि का अनुकरण करके करता है। नट में रामादि की प्रतीति को न्याय दर्शन के "अनुमान" के आधार पर व्याख्यायित करते हुए शंकुक ने इसे लौकिक अनुमान से विलक्षण माना है। "चित्र तुरग न्याय" का दृष्टान्त देते हुए वे कहते हैं कि जिस प्रकार चित्र में बना घोड़ा वास्तविक घोड़ा न होते हुए भी घोड़ा कहा जाता है जो शुद्ध, भ्रान्ति या मिथ्या ज्ञान से भिन्न है, यह एक कलाजन्य प्रतीति है जो सामान्य प्रतीति से भिन्न है उसी प्रकार नट के द्वारा मूल पात्र रामादि की प्रतीति होती है जो मिथ्या होने पर भी मिथ्या नहीं कही जा सकती क्योंकि यह अलौकिक, विलक्षण एवं कलाजन्य प्रतीति है।

शंकुक सामाजिक के द्वारा रस की प्रतीति को स्वीकार करते हैं, लेकिन इसे अनुमान की क्रिया मानते हैं।

शंकुक के रस सिद्धान्त की शक्ति यह है कि इन्होंने सर्वप्रथम कला प्रतीति को सामान्य प्रतीति से विलक्षण प्रतिपादित किया।

इन्होंने मूल पात्र और कवि निबद्ध पात्र में जो भ्रान्ति थी उसका स्पष्टीकरण करते हुए अनुकार्य के वास्तविक रूप को कवि निबद्ध पात्र के रूप में प्रस्तुत किया।

शंकुक के सिद्धान्त का महत्व इस दृष्टि से और भी बढ़ जाता है कि इन्होंने रस निष्पत्ति प्रक्रिया में लोल्लट की अपेक्षा सामाजिक को अधिक महत्व दिया। शंकुक के सिद्धान्त पर आक्षेप करते हुए कहा गया कि रस अनुकरण रूप नहीं हो सकता। रस के अनुमान की कल्पना शंकुक के सिद्धान्त की सबसे बड़ी सीमा है। आलोचकों के अनुसार, अनुमान तो बुद्धि की क्रिया है, अनुमान किसी प्रकार आह्लादायक नहीं हो सकता, क्योंकि यह निश्चयात्मक नहीं, होता।

भट्टनायक : भुक्तिवाद

भट्टनायक रस निष्पत्ति के प्रश्न पर सामाजिक पक्ष से विचार करते हैं। ''निष्पत्ति'' का अर्थ ''भुक्ति'' मानते हुए इनका कहना है कि रस की न. उत्पत्ति होती है, न अनुमति, न अभिव्यक्ति वरन् भुक्ति होती है।

भट्टनायक से पूर्व आनन्दवर्द्धन ने शब्द की व्यंजनाशक्ति के आधार पर रस को व्यंग्य माना लेकिन इन्होंने व्यंजना शक्ति को अस्वीकृत कर दो अन्य व्यापारों की कल्पना की—भावकत्व एवं भोजकत्व।

भट्टनायक ने काव्य को व्यापार मानते हुए इसके तीन व्यापारों की कल्पना की—अभिधा, भावकत्व एवं भोजकत्व।

सर्वप्रथम अभिधा शक्ति कार्य करती है। काव्य में दोष का अभाव तथा गुण एवं अलंकारमयता से तथा नाटक में आंगिक, वाचिक, सात्विक तथा आहार्य चार प्रकार के अभिनय के प्रभाव से शास्त्रादि से भिन्न एक प्रकार की अपूर्व प्रभाव क्षमता उत्पन्न हो जाती है। काव्यगत भावना होती है। भावना का अर्थ है भावकत्व। काव्यगत भावना में रस साध्य है और साधारणीकरण साधन। भावकत्व व्यापार से एक ओर विभावादि का साधारणीकरण होता है अर्थात विभावादि व्यक्ति, देश, काल सम्बन्ध निरपेक्ष होकर सामान्य हो जाते तथा दूसरी ओर सामाजिक के ''निविडनिजमोहसंकट'' का निवारण हो जाता है, अर्थात् वह भी व्यक्ति संबंधों तथा देश, काल की विशेषताओं से मुक्त होकर सामान्य स्थिति में पहुँच जाता है।

रामादिक की रत्यादि स्थायी चित्तवृत्ति जब साधारणीकृत होती है तभी वह भावना का विषय बनती है और सामाजिक को उसका विशेष रूप में साक्षात्कार होता है। वह उसका भोग करता है। इस रस भोग को भट्टनायक ने भोजकत्व व्यापार कहा। रस भोग लौकिक अनुभव नहीं है। यह हृदय की एक अवस्था है जिसका स्वरूप है द्रुति, विस्तार और विकास। हमारा हृदय सत्व, रजस् और तमस् तीन गुणों से युक्त है। रजोगुण से द्रुति, तमोगुण से विस्तार और सत्त्वगुण से हृदय का विकास होता है। भोगीकरण की अवस्था में सत्त्वगुण का प्रचुरता से उद्रेक होता है। इस प्रकार हृदय की रजस् तथा तमस् गुणों से युक्त सत्त्वमयी अवस्था में सामाजिक ''ब्रह्मास्वाद सविध'' आनन्द (रस) का भोग करता है।

रस निष्पत्ति की व्याख्या में साधारणीकरण की उद्भावना भट्टनायक की कल्पना का अभूतपूर्व योगदान है। इसके द्वारा इन्होंने काव्य की इस महत्तम समस्या का समाधान करने का प्रयास किया कि काव्य का ''विशेष'' किस प्रकार ''निर्विशेष'' बनकर सामाजिक का रसास्वादन करता है।

भट्टनायक ने सर्वप्रथम सामाजिक को रस का प्रत्यक्ष भोक्ता निर्धारित किया। इनके द्वारा प्रतिपादित ''सत्त्वोद्रेक'', ''संविद्विश्रान्ति'' एवं रस का ''ब्रह्मास्वाद सविध'' स्वरूप रस निष्पत्ति के गहन पक्षों पर प्रकाश डालता है जिसे परवर्ती आचार्यों ने भी स्वीकार किया।

भट्टनायक के सिद्धान्त की कुछ सीमाएँ भी हैं। सर्वाधिक आक्षेप उनकी भावकत्व एवं भोजकत्व कल्पना पर किया गया। अभिनवगुप्त का कहना है कि आनन्दवर्द्धन ने भट्टनायक

से पूर्व व्यंजना व्यापार के आधार पर रस को व्यंग्य माना था। लेकिन भट्टनायक चूँकि व्यंजना व्यापार स्वीकार ही नहीं करते अतएव उन्होंने आनन्दवर्द्धन की रसाभिव्यक्ति की प्रक्रिया को अस्वीकार कर शब्द के दो अन्य व्यापारों—भावकत्व एवं भोजकत्व की कल्पना की। अभिनवगुप्त का कहना है कि यदि भट्टनायक का अभिप्रेत अर्थ व्यंजना व्यापार से ही सिद्ध हो सकता है तब इन दोनों अतिरिक्त व्यापारों की आवश्यकता क्या है?

अभिनवगुप्त भट्टनायक द्वारा प्रतिपादित रस की भुक्ति का खंडन करते हुए कहते हैं कि रस भोग का विषय नहीं। वह तो पूर्णतया आत्मगत है। अत: इस लोकोत्तर भोग का अन्तर्भाव "ध्वनन व्यापार" के ही अन्तर्गत हो जाता है। इसके लिये अलग से भोजकत्व व्यापार की कल्पना निरर्थक है।

अभिनवगुप्त ने भट्टनायक के संमत अंश को स्वीकार करते हुए उसके प्रति आदर भी दर्शाया है जैसे उनकी साधारणीकरण की उद्भावना।

अभिनवगुप्त : अभिव्यंजनावाद

"निष्पत्ति" का अर्थ अभिव्यक्त करते हुए अभिनवगुप्त का कहना है कि रस की न उत्पत्ति होती है, न अनुमिति, न भुक्ति वरन् अभिव्यक्ति होती है।

रस को पूर्णतया आत्मगत मानते हुए उनका कहना है कि आनन्दमय ज्ञान स्वरूप आत्मा का ही आस्वादन रस रूप में होता है। केवल उस आनन्दमय की विचित्रता के सम्पादन के लिये रति, शोक, आदि वासनाओं का व्यापार होता है और उन वासनाओं (स्थायी भाव) के उद्बोधन के लिये अभिनयादि रूप नट का व्यापार। यथोचित विभावादि को उपस्थित कराकर कवियों और नटों द्वारा स्थायीभाव रसत्व को प्राप्त कराये जाते हैं। इसीलिये लौकिक चित्तवृत्ति का ज्ञान कवि एवं नट दोनों के लिये आवश्यक है।

अभिनवगुप्त कवि एवं सामाजिक दोनों में वासना रूप स्थायी भाव की सत्ता मानते हुए सम्पूर्ण काव्य-संसार को रसमय घोषित करते हैं जिसमें मूल बीज स्थानीय कविगत रस है, वृक्ष स्थानीय काव्य है, पुष्प स्थानीय नट के अभिनयादि व्यापार हैं तथा फल स्थानीय सामाजिक का रसास्वाद है।

रस प्रतीति के लिये सहृदयता को आवश्यक मानते हुए वे कहते हैं कि काव्य के अनुशीलन के अभ्यासवश जिनका मनरूपी दर्पण विशद और निर्मल हो गया है जिनमें वर्णनीय के साथ तन्मय हो जाने की योग्यता है, जिनका हृदय विभावादि रूप अर्थ के साथ संवाद स्थापित कर सकता है, वे ही सहृदय हैं, काव्यार्थ उनके शरीर को उसी प्रकार व्याप्त कर लेता है जैसे सूखे काठ को अग्नि।

रस की प्रतीति को अभिनवगुप्त "निर्विघ्न संविद्विश्रान्ति" कहते हैं। तात्पर्य यह कि कवि, नट एवं सामाजिक जब तीनों विघ्नरहित होते हैं तभी रस प्रतीति होती है। इस संदर्भ में इन्होंने सात प्रकार के विघ्नों की सूची भी प्रस्तुत की है।

वैसे तो भट्टनायक ने भी नाट्य एवं काव्य दोनों में रस की स्थिति स्वीकार की है लेकिन उसे पूर्ण रूपेण प्रतिष्ठित करने में अभिनवगुप्त का योगदान है। ये नाट्य रस को काव्य

रस से श्रेष्ठ मानते हैं, क्योंकि वह अहृदय को सहृदय बनाता है तथा बाह्य विघ्नों को वाद्य-नृत्यादि से दूर करने में सहायक होता है। काव्य को चर्वणा-व्यापार मानते हुए ये चर्वणा की दृष्टि से सामाजिक को महत्व देते हैं। इनके अनुसार, सामाजिक की प्रतिभा के विषयीभूत रस के आवेश से ही काव्य का सौन्दर्य व्यंग्य होता है।

अभिनवगुप्त रस प्रतीति को अलौकिक मानते हैं क्योंकि इस स्थिति में सत्व का उद्रेक तथा रजस् एवं तमस् का शमन हो जाता है। इनका सबसे बड़ा योगदान यह है कि इन्होंने रस को पूर्णतया आत्मगत बना दिया और रसानुभूति को निर्विघ्न साक्षात्कारात्मक प्रतीति कहा। रस को सिद्धान्त रूप में प्रतिष्ठित करने में भरत के रससूत्र के व्याख्याकारों तथा विशेषकर अभिनवगुप्त का विशिष्ट योगदान है क्योंकि अभिनवगुप्त तक पहुँचकर नाट्यरस नाट्य एवं काव्य दोनों से सम्बद्ध हो गया।

साधारणीकरण परिचय

उपलब्ध सामग्री के आधार पर 'साधारणीकरण' की सबसे पहली औपचारिक परिभाषा भट्ट नायक ने दी

भट्ट नायक रास सिद्धांत की व्याख्या करते हुए भावकत्व व्यापार की चर्चा की और सम्बन्ध में साधारणीकरण की अवधारणा को परिभाषित किया

साधारणीकरण का अर्थ होता है "व्यक्ति विशेष के भावों को साधारण या सार्वभौम कर देना“

साधारणीकरण का साधन क्या है?

- भाषा

साधारणीकरण किसका होता है ?

साधारणीकरण किसका होता है?

भट्ट नायक

भावकत्व व्यापार-

- यह रास का विषय है. इससे रचनागत रस साधारणीकृत हो कर भावित आस्वाद के योग्य हो जाता है.
- इससे सहृदय के मोह का विनाश होता है यानि वह स्वार्थ के बंधन से परे स्व-पर की भावना से मुक्त हो जाता है
- वह विभावादि का साधारणीकरण करने वाला है - यह साधारणीकरण ही उसकी आत्मा है.
- कवी अपनी प्रतिभा से विभावादि या को इस रूप में तथा ऐसी भाषा में प्रस्तुत करता है कि विभावादि व्यक्तिगत ना रह कर साधारण सार्वभौम हो जाते हैं.

अभिनव गुप्त

- सहृदय का साधारणीकरण

विश्वनाथ

- विभावादि का ममत्व परत्व से मुक्त होना

श्याम सुन्दरदास

- सहृदय के चित्त का साधारणीकरण
- मधुमति भूमिका

आचार्य रामचंद्र शुक्ल

आलम्बन का

- आलम्बन रूप में प्रतिष्ठित व्यक्ति सामान प्रभाव वाले कुछ धर्मों की प्रतिष्ठा के कारण सबके भावों का आलम्बन होता है.

आलम्बनत्व धर्म का

- कल्पना में मूर्ती तो विशेष की होगी, पर वह मूर्ती ऐसी होगी जो प्रस्तुत भाव का आलम्बन हो सके, उसी को पाठक या श्रोता के मन में जगाए जिसकी व्यंजना आश्रय अथवा कवी करता है. इससे सिद्ध हुआ की साधारणीकरण आलम्बनत्व धर्म का होता है.

डॉ. नगेन्द्र

- कवि की अनुभूति का साधारणीकरण

Thanx for Trusting Me

Thanx for Watching